REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2022

ममता कालिया के उपन्यासों में नारी जीवन का संघर्ष

स्वाति पाण्डेय[1] & डॉ. प्रेमशंकर शुक्ल[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस.आर.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय हनुमना, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

भारतीय समाज में विशिष्ट महिलाओं की संख्या मुठ्ठी भर है, पर जो विशिष्ट नहीं हैं, जिनकी बेड़ियाँ टूटी नहीं हैं या सुरक्षा व सुविधा के चुनाव के कारण एक नीति के तहत तोड़ी नहीं गयी है, जिनकी परिभाषाएँ अभी बदली नहीं हैं या कि बदल सकने के विकल्प की उपलब्धि से जो अभी अपरिचित हैं, इनकी संख्या अनंत है। इनको विशाल संसार की ताज़ा खबर मालूम नहीं है। ऐसी स्त्रियाँ आज कहीं की नहीं। नारी के उत्पीड़न और दासता का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना असमानता और उत्पीड़न पर आधारित सामाजिक संरचनाओं के उद्भव और विकास का इतिहास। प्राचीन साहित्य में ढेरों मिथक और कथाएँ मौजूद हैं जो पुरुष–स्वामित्व की सामाजिक स्थिति के विरुद्ध स्त्रियों के प्रतिरोध और विद्रोह का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। नारी की दासता और दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति का कई पुरुष–विचारक प्राचीन काल से साहसिक एवं तर्कपूर्ण प्रतिवाद करते रहे हैं, इसके प्रमाण भारत और सारी दुनिया के इतिहास और साहित्य में मिलते हैं।

मुख्य शब्द – ममता कालिया, भारतीय समाज, नारी जीवन, एवं संघर्ष ।

प्रस्तावना –

नारी जीवन का संघर्ष शायद आज के परिवेश की सबसे विषम और जटिल समस्या है। जहाँ प्रेम होना चाहिए, वहीं कटुता है। जहाँ मिलन होना चाहिए, वहीं जटिलता है। शोषण के बाद जब अस्तित्व का प्रश्न उत्पन्न होता है और वहाँ किसी भी पक्ष द्वारा सुख की बात स्वीकार नहीं की जाती तथा जहाँ सुख भी एक 'मजबूरी' की सीमा में बँधा होता है, वहाँ विद्रोह की मानसिकता स्वाभाविक ही है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नारी द्वारा 'स्वास्तित्व' (जिसे स्त्री–विमर्श अधिक महत्व देता है) की लड़ाई का प्रारम्भ हुआ। कितनी विषमता है कि संविधान प्रदत्त 'समानता' के 'व्यावहारिक' पक्ष से पीड़ित नारी का अस्तित्व–संघर्ष आज भी शुरू है। वर्तमान नारी का यह अनुभवजन्य आक्रोश मात्र भौतिकवादी युग का परिणाम नहीं, परम्परागत मान्यताएँ, विचारधाराएँ भी इस आक्रोश को बनाए रखने में उत्तरदायी हैं।

समकालीन महिला लेखिकाओं ने अपनी बौद्धिक क्षमता के आधार पर हिन्दी उपन्यास साहित्य की श्रीवृद्धि में नारी को केन्द्रित कर उपन्यास सृजन में अपना मौलिक योगदान दिया है। इस सम्बन्ध में माधुरी सोनटक्के का कथन उल्लेखनीय है – ''इन उपन्यास लेखिकाओं ने नारी जीवन के प्रत्येक पहलू को दुनिया के सामने लाया और केवल नारी–जीवन ही नहीं बल्कि नारी–जीवन को प्रभावित करने वाले हर क्षेत्र को अपनी लेखनी का विषय बनाया। लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में बहुआयामी प्रतिभा प्रस्तुत की है। उन्होंने वर्तमान में हर क्षण को एहसास किया है और उसे स्वर देना चाहा है।''[1]

महिला उपन्यासकारों में अपने अद्वितीय व्यक्तित्व एवं समृद्ध साहित्यों के माध्यम से विख्यात 'ममता कालिया' ने वर्तमान नारी की गतिविधियों को अनुभव कर अपनी कृतियों में सम्मिलित किया है।

ममता कालिया का 'बेघर' उपन्यास नारी के नैतिक मूल्यों एवं जड़ पुरुष की मानसिकता का करारा जवाब है। एक महिला साहित्यकार के रूप में स्त्री के कौमार्य के संबंध में स्त्री देह से जुड़ी शुचिता और पवित्रता की भावना जैसे जटिल मुद्दे को उठाकर लेखिका ने अत्यंत साहस का कार्य किया है। निःसंदेह इस पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष मानसिकता का खुला आचरण प्रमाणित हुआ। यह रूढ़िग्रस्त मानसिकता कि विवाह पूर्व स्त्री के किसी परपुरुष से संबंध हो या किसी घटना की शिकार पीड़ित हों समाज के नीति नियमों के अनुसार वह त्याग दी जाती है अथवा कलंकित मानी जाती है।

ममता जी के उपन्यास 'बेघर' की संजीवनी समाज के इसी नीति नियमों की शिकार ऐसी पीड़ित है, जिसे बिना किसी गलती के पुरुष के दकियानूसी विचारधारा से मानसिक पीड़ा झेलनी पड़ता है। सहपाठी विपिन द्वारा आकस्मिक आक्रमण की शिकार संजीवनी चुपचाप खून का घूँट पी कर रह जाती है। स्वयं भी कभी 'अपराध बोध' से मुक्त नहीं हो पाती। अंततः घर से बेघर हो जाती है। लेखिका लिखती है – ''व्यक्तिगत सम्पत्ति के उत्तराधिकार को पुरुष सत्ता द्वारा गढ़े कायदे–कानून के अनुसार बनाए–बचाए रखने के लिए कौमार्य, यौनशुचिता, वगैरह आवश्यक नैतिक मापदंड माना जाता रहा है। यह सिर्फ स्त्रियों के लिए ही जरूरी है– पुरुष के लिए नहीं। जहाँ स्त्री इस नियम का उल्लंघन करती है वहाँ उसे फौरन घर से 'बेघर' कर दिया जाता है–यानी विवाह संस्था से बाहर। कुल्टा, वेश्या, कालगर्ल जैसे नाम देकर उन्हें साँझी संपत्ति या उपयोग की वस्तु बना दिया जाता है।''[2]

नारी जीवन संघर्ष के सम्बन्ध में ममता कालिया के उपरोक्त विचार सराहनीय हैं। आधुनिकता एवं पाश्चात्य संस्कृति ने नारी को प्रभावित कर स्वतंत्र अस्तित्व की चाह पैदा की है। नारी शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति अब जागरूक हो गयी है। नारी अब घर की दहलीज लांघ कर समाज के प्रत्येक कार्य में बराबर की भागीदार है। पाश्चात्य सभ्यता ने नारी के नैतिक मूल्यों को दूषित किया है। ''नारी का अपने शरीर की नुमाइश करना, अर्धनग्न तस्वीर खिंचवाना, सौंदर्य प्रतियोगिताओं में नारियों का शारीरिक प्रदर्शन आदि पश्चिम की भोगवादी संस्कृति ने भारत के मानव मन को कितना दुष्प्रभावित कर दिया है, इसकी झलक प्रतिदिन किसी न किसी उदाहरण से मिलती रहती है। सम्पूर्ण विश्व को सतीत्व की परिभाषा समझा पाने वाली भारतीय नारी भौतिक चकाचौंध से आकर्षित होने को ही वास्तविक उन्नति एवं इसी को स्वतंत्रता की परिभाषा समझ बैठी हैं, जबकि सच्चाई इसके विपरीत है। वर्तमान स्थिति को यदि परखे तो भारतीय नारी घोर पतन की खाई में उतर रही हैं, क्योंकि नैतिकता, चरित्र तथा सदाचार जैसे शब्दों का हमारी युवा नारी के जीवन में कोई स्थान नहीं रह गया है।''[3]

विश्लेषण –

वर्तमान में जीवन की विसंगतियों के मध्य संघर्षरत नारी जीवन को ममता कालिया ने उपन्यासों के कथ्य के द्वारा यथार्थपरक दर्शाया है। अँधेरे का ताला की नन्दिता आधुनिक कार्यरत नारी है। कॉलेज की प्रधानाध्यापिका के रूप में नन्दिता का जीवन सतत् विविध संघर्षों से ग्रसित है। कॉलेज में बी.ए. की छात्रा के अभिभावक भाई के द्वारा अचानक हमले से घायल नन्दिता का संघर्ष वर्तमान शिक्षा जगत में फैले भ्रष्टाचार तक का खुलासा करता है। उपन्यास के संवाद में – ''ये छोटी–छोटी बातें नन्दिता को उसकी औकात समझा जाती। वित्तविहीन, अनानुदानित महाविद्यालय, समस्त संस्थाओं के बीच दलितों से भी दलित कोटि का होता है – यह सच्चाई है। शासन की नाक के नीचे सभी न्यूनतम मानकों का खुलेआम उल्लंघन होता रहता है, लेकिन शासन

उसके स्थायीकरण की कार्यवाही ठण्डे बस्ते में डालता रहता है। नन्दिता ने बड़ी से बड़ी तोप से सिफारिश भिजवायी पर नतीजा शून्य रहा। ऐसे में प्रबंधतंत्र हावी रहा तो क्या आश्चर्य।''[4]

ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में नारी की संवेदनशीलता को दृष्टिगत रखते हुए उसके संघर्षों को दर्शाया है। ममता कालिया की रचनाओं में स्त्री के जीवन के यथार्थबोध वर्तमान परिवेश को अभिव्यक्त करते हैं। 'अंधेरे का ताला' उपन्यास की नायिका नन्दिता कॉलेज की प्रधान अध्यापिका है। वह छात्राओं के नैतिक आचरण के प्रति विशेष ध्यान रखती। लेखिका लिखती है – ''बड़ी बहनजी हर सप्ताह शनिवार को छात्राओं को नैतिक शिक्षा की खुराक पिलाती हैं पर छात्राएँ इस व्याख्यान से कितनी शिक्षित होती हैं, इसका आंकलन टेढ़ा काम है।''[5]

प्रधानाध्यापिका नन्दिता अनुशासन प्रिय होने के साथ–साथ कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान भी है। वर्तमान शिक्षा पद्धति एवं बढ़ते अपराधीकरण की समस्याओं के प्रति चिन्तित वह आवश्यक सुधार लाने का पूर्ण प्रयास करती है। छात्राओं के नैतिक आचरण की देखभाल का संकल्प कर नन्दिता अगली पीढ़ी में सुधार की अहम भूमिका निभाना चाहती है। उपन्यास के संवाद में – ''रात भर इन्हीं विचारों में भटकती नन्दिता की नींद गायब हो गयी। उसे लगा, आखिर ऐसी कौन–सी शिक्षा–पद्धति काम में लायी जाय जो विद्यार्थियों को डिग्री के साथ जीवन मूल्यों से भी अलंकृत करे। यह काम नैतिक शिक्षा के नाम पर दिये गये रूखे–सूखे प्रवचनों से नहीं होना है।''[6]

नारी कितनी ही शिक्षित एवं आधुनिक क्यों न हो किन्तु समाज में उसे नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा रखते हुए उसका आचरण करना अनिवार्य माना जाता है। ममता कालिया ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी के नैतिक मूल्यों को यथार्थ रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। उनके उपन्यासों की नारी आधुनिक शिक्षित तो है किन्तु नैतिक मूल्यों का उल्लंघन कभी नहीं करती। वे अनेक संघर्षों से ग्रसित अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति जागरूक है। ममता जी के उपन्यास 'लड़कियाँ' की 'लल्ली' और अफशाँ ऐसी ही नारी पात्र हैं, जो मुंबई जैसे महानगर में अपने–अपने सपने साकार करने की दृष्टि से रहती हैं। अकेलेपन तथा असुरक्षा का बोध उन्हें हर क्षण रहता है। फिर भी वे नैतिक मूल्यों के प्रति पूर्ण निष्ठावान हैं। लेखिका ने अनेक संदर्भों से उनके विविध संघर्षों को दर्शाया है, किन्तु उनमें कहीं भी अनैतिकता जैसे गुणों को अभिव्यक्त नहीं किया।

आज के पुरुष प्रधान समाज में श्रेष्ठतम् नारी की श्रेणी में उस स्त्री को रखा जाता है, जो नैतिकता, मर्यादा, शील, मातृत्व आदि सभी प्रतिमानों पर खरी होकर अपना जीवन जीने का प्रयास करती है। नारी की नैतिकता और पवित्रता बनाने के लिए दैहिकता से गूढ़ संबंध है। ममता जी ने नारी के नैतिकता को दैहिकता से जोड़ने के इस मिथक को तोड़ने का प्रयास किया है। समाज के बदलते प्रतिमानों में आज की 'नारी' नैतिकता तथा मान सम्मान के नाम पर मानसिक जंजीरों को तोड़कर प्रतिशोध लेना चाहती है। ममता जी के कथन में – ''बेघर' में संजीवनी चुपचाप खून का घूँट पीकर रह जाती है, क्योंकि महानगरों में भी उस समय कौमार्य के मिथक से औरत इतनी मुक्त नहीं हुई थी, जितनी आज दिखाई देती है। तब नैतिक मर्यादा तोड़ना और तोड़कर स्वीकार करना असंभव था। धीरे–धीरे बाद में विवाह के वायदे पर देह संबंध बनाती लड़कियों के साथ लड़कों ने विश्वासघात किया, तो वे चुप रहने की अपेक्षा उन्हें अदालत तक खींच कर ले गई। मान–सम्मान की कीमत पर इस प्रतिरोध का भले ही कोई न्यायपूर्ण हल न मिला हो लेकिन बदनामी के भय से मुक्त होने की कोशिश तो की।''[7]

आज भी नारी की नैतिकता पर भारतीय समाज में प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। संजीवनी की तरह अनेक नारियाँ नैतिकता के नाम पर बलिदान देती आयी हैं। इस तथ्य को ममता कालिया ने उठाने का साहस किया है। इस पुरुष सत्तात्मक समाज में संदीप जैसे पुरुष भी हैं, जो किसी भी कीमत पर अपनी पत्नी के परपुरुष से बात तक करना सह नहीं पाते तथा अपना वर्चस्व बनाये रखना चाहते हैं, ऐसे पुरुषों को उपन्यासों में चित्रित कर मतता जी ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

वर्तमान, भारतीय समाज की नारी अपने पारम्परिक बन्धनों एवं पुरानी मानसिकता को तोड़कर स्वयं समस्या के रूप में उपस्थित हैं। नारी के जीवन से जुड़ी उनकी समस्याओं को समाधान के रूप में प्रस्तुत कर साहित्यकारों ने समाज में वैचारिक जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज की नारी शिक्षित होकर अन्याय और अत्याचार के खिलाफ खड़ी है। जीवन मूल्यों में नारी भी व्यक्तिगत विकास के लिये प्रयत्नशील है। डॉ. शान्ति कुमार स्याल का कथन है – ''आज जब नारी की पारस्परिक भूमिकाओं को नए दृष्टिकोण से देखा

जाने लगा है, तब नये प्रश्न उभर कर सामने आने लगे हैं। परम्परागत जीवन–मूल्य वर्तमान यथार्थ के धरातल पर कितने उपयोगी रहे हैं, कितने अनुपयोगी, यह चर्चा जोर–शोर से चल निकली है। नारी ने समस्त नारी विरोधी परम्परागत मूल्यों को ठुकराना आरम्भ किया है। अपने अस्तित्व के लिये संघर्षरत नारी में घुटन, तनाव, संघर्ष, संत्रास, पीड़ा स्वाभाविक रूप में निर्मित होते हैं। नारी–व्यक्तित्व में अस्तित्व बोध प्रखर रूप में चित्रित होने लगा है। वह अब केवल बेटी, बहन, पत्नी या माँ नहीं है, उसका अस्तित्व एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में है।''[8]

ममता कालिया ने संघर्षरत नारी जीवन को गहरी आत्मीयता और उन्मेष के साथ अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। 'नारी जीवन' किसी न किसी समस्याओं से ग्रसित सदैव ही रहा है। वर्तमान भारत में शिक्षित नारी आर्थिक रूप से स्वावलम्बी तो हो गई किन्तु परम्परागत मूल्यों का खंडन वह पूरी तरह नहीं कर सकी, ममता जी ने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अपने उपन्यास में जीवन के यथार्थ को सृजनात्मक रूप से नारी अस्मिता एवं संघर्षों को दर्शाया है। 'बेघर' की संजीवनी का जीवन यथार्थ में नारी–संघर्ष की संवेदनशील गाथा है। 'कौमार्य के मिथक' पर इस पुरुष समाज में व्याप्त रूढ़ परम्पराओं पर बलि चढ़ने वाली संजीवनी घर से बेघर कर दी जाती है। नारी के शरीर को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझना तथा उसके प्रति भोगवादी प्रवृति तथा अमानवीय व्यवहार करना संजीवनी को मानसिक रूप से भी आघात पहुँचाता है। संजीवनी की मनःस्थिति के बारे में लेखिका के शब्दों में व्यक्त है – ''दूसरी ओर संजीवनी, खुद 'अपराध बोध' से शायद कभी मुक्त नहीं हो पाई। वह बार–बार झुँझलाती, बड़बड़ाती और उसकी नफरत भरी याद में दुर्घटना को याद करके पीली पड़ जाती। वह सोचती रही कि कल परमजीत को यह सब कह देगी उसे समझना ही होगा कि संजीवनी के लिए यह पहला ही अनुभव था। उसके ऊपर 'आकस्मिक आक्रमण' हुआ था। वह विपिन के साथ एकांत कमरे में' नहीं थी, उसने रेस्तरा के केबिन में ही उसे जबरन दबोच लिया था और खड़े–खड़े ही दुर्व्यवहार किया था। वह कह भी देती तो क्या परमजीत विश्वास करता, संजीवनी की नजर में यह अप्रिय व छोटी–सी दुर्घटना हो सकती है, लेकिन सदियों से स्थापित धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक व्यवस्था और पुरुष सत्ता द्वारा निर्धारित कानूनी मर्यादा का 'उल्लंघन' है जिसे अनदेखा कर 'क्षमा' नहीं किया जा सकता।''[9]

संजीवनी की तरह 'दुक्खम–सुक्खम' की 'इन्दु' का जीवन भी अत्यंत संघर्षमय है। दो बेटियों को जन्म देने के पश्चात् ससुराल में इन्दु सास एवं ननदों से सदा उपेक्षित व्यवहार पाती है। इन्दु आगरा के प्रतिष्ठित घराने की सुंदर सुशील संस्कारी नारी थी। पति कविमोहन की विरह वेदना से व्याकुल इन्दु गृहस्थी के जंजाल में फँसकर अपनी बेटियों तथा परिवार के मध्य तनावग्रस्त, संघर्षशील जीवन व्यतीत करती है। उपन्यास के संवाद में – ''पिछले काफी समय से इन्दु का जी उखड़ा–उखड़ा रहता था। उसे लगता जैसे वह जमुना की मझधार में फँसी है, उसके लिए न कूल है न किनारा। पति रूपी पतवार उसके हाथ से छूटी जा रही है। अल्लीपार ससुराल का जाल–जंजाल है तो पल्लीपार मायके का मृगजाल। माँ–बाप के मर जाने के बाद मायके में भाइयों की जगह भाभियों का राज था। वहाँ उसकी रसाई मुश्किल थी। ससुराल में जान–खपाई के सिवा कुछ नहीं था। वह सोचती क्या नारी के लिए तीसरी कोई जगह नहीं होती जहाँ वह जाकर अपना मन हल्का कर ले।''[10]

अपने जीवन से हताश इन्दु की सास विद्यावती भी नारी के लिए घर–परिवार को एक किस्म का आजीवन कारावास मानती है। सीमित शिक्षा के बावजूद उसमें सहज व्यावहारिक ज्ञान था। वह चरखा समिति की सदस्य बनकर देश की स्वतन्त्रता के साथ–साथ नारी जीवन की स्वतन्त्रता की मंशा रखती है। वह मन में विचार करती है – ''इस गृहस्थी में बा–मशक्कत कैद, डंडा, बेड़ी, तनहाई जाने कौन–कौन सी सजा काट ली।''[11]

विद्यावती के माँ–बाप ने उसके विवाह के पश्चात उससे किनारा कर लिया था। मायका खत्म होने की सच्चाई को धीरे–से हजम कर पाई थी। लेखिका लिखती हैं – ''विद्यावती का जैसे स्वप्न ही टूट गया। उसने सोचा था आजादी आएगी तो रामराज्य आ जाएगा, बल्कि सीता राज्य आ जाएगा। औरत को आदमी की धौंस नहीं सहनी पड़ेगी। वह अपनी मर्जी की मालकिन होगी। कोई उसके हाथों किये खर्च पर नाक–भौं नहीं सिकोड़ेगा, कोई उसे बात–बात पर झिड़की नहीं लगायेगा, घर बाहर हर जगह उसके साथ बराबरी का बर्ताव होगा। यह क्या कि आजादी के छह महीने बीत गये और औरत की जिन्दगी, वहीं ढाक के तीन पात।''[12]

'नरक–दर–नरक' उपन्यास की उषा प्रेम विवाह के पश्चात् संघर्षशील जीवन व्यतीत करती हुई सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक पृष्ठभूमि पर तनावग्रस्त है। उषा के जीवन की समस्या निरन्तर बढ़ती जाती

है। अकेलापन और मानसिक तनावों के मध्य उषा आर्थिक रूप से भी अभावग्रस्त जीवन जीती है। बच्चे के आने के बाद वह जगन और बच्चे के मध्य स्वयं को असमंजस की स्थिति में फँसा हुआ पाती है। उषा की मनःस्थिति को उपन्यासकार ने स्पष्ट किया – ''उषा को लगता, बच्चे के प्रति इतनी फिक्र सबकी एक मिली–जुली साजिश है उसे अप्रसन्न करने की। उसे एक क्षण को भी यह नहीं लगता कि वह अपना गन्तव्य पा गई है। जो हमेशा से समूची, स्वतंत्र इकाई बन जाना चाहती थी, उसे टिमटिमाती आँखों वाला एक शिशु यथार्थ पकड़ा दिया गया था, यह तुम्हारी जिम्मेदारी है। अब तक जगन ने जीवन में उसे दोस्त का दर्जा दिया था। अब उषा को लगा जगन की अपेक्षाएँ बदल गई हैं। वह अपनी किसी व्यस्तता, तनाव, परेशानी, शरारत में उसे हिस्सेदार न बनाता। इतनी बड़ी जमीन दिखाने के बाद उसने उषा को इस 12 गुणे 15 की दुनिया में नजर बन्द कर दिया था। ऊपर से उषा से यह उम्मीद की जा रही थी कि वह अपनी कैद को अभिभूत होकर भोगे और खुश हो।''[13]

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों के द्वारा विभिन्न नारी–जीवन के संघर्षों को दर्शाया है।

संदर्भ –

[1] डॉ. माधुरी सोनटक्के – महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में चेतना के प्रवाह, पृष्ठ 17–18
[2] ममता कालिया – बेघर (भूमिका), पृष्ठ 11
[3] शान्ति कुमार स्याल – भारतीय नारी और पश्चिमीकरण, पृष्ठ 29
[4] ममता कालिया – अँधेरे का ताला, पृष्ठ 45
[5] ममता कालिया – अँधेरे का ताला, पृष्ठ 15
[6] ममता कालिया – अँधेरे का ताला, पृष्ठ 56
[7] ममता कालिया – बेघर (भूमिका), पृष्ठ 12
[8] डॉ. शान्ति कुमार स्याल – भारतीय नारी और पश्चिमीकरण, पृष्ठ 33
[9] ममता कालिया – बेघर (भूमिका), पृष्ठ 12
[10] ममता कालिया – दुक्खम–सुक्खम, पृष्ठ 178
[11] ममता कालिया – दुक्खम–सुक्खम, पृष्ठ 97
[12] ममता कालिया – दुक्खम–सुक्खम, पृष्ठ 166–167
[13] ममता कालिया – नरक–दर–नरक, पृष्ठ 167